८. प्र०—कुधर्म किसे कहते हैं ?

उ०—हिंसा प्रधान धर्मको कुधर्म कहते हैं।

९. प्र०—सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

उ०—सम्यक्ज्ञान मूलक आचरणको सम्यक्चारित्र कहते हैं।

१०. प्र०—सम्यक्चारित्र किसलिये और कब धारण किया जाता है ?

उ०—मोहरूपी अन्धकारके हट जानेपर जब सम्यग्दर्शनके साथ ही साथ सम्यग्ज्ञानको भी प्राप्ति हो जाती है तब राग और द्वेपको दूर करनेके लिये साधु पुरुष सम्यक्चारित्रको धारण करता है।

११. प्र०—सम्यक्चारित्रके कितने भेद हैं ?

उ०—दो मूल भेद हैं—देशचारित्र और सकलचारित्र।

१२. प्र०—देशचारित्र और सकलचारित्रका कौन पालन करता है ?

उ०—समस्त परिग्रहसे रहित साधुओंके सकलचारित्र होता है और परिग्रही गृहस्थोंके देशचारित्र होता है।

१३. प्र०—देशचारित्रके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—मूलगुण और उत्तरगुण।

१४. प्र०—मूलगुण कितने हैं ?

उ०—आठ हैं—मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग और पांच प्रकारके उदुम्बर फलोंका त्याग। सोमदेव सूरिके मतसे ये आठ मूलगुण हैं। स्वामी समन्तभद्राचार्यने हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ये पांच पाप और मद्य मांस मधुके त्यागको अष्ट मूलगुण कहा है। और स्वामी जिनसेनाचार्यने पांचों पाप, मद्य, मांस और जुआके त्यागको आठ मूलगुण कहा है।

१५. प्र०—मूलगुण किसे कहते हैं ?

उ०—सबसे प्रथम पालन करने योग्य गुणोंको मूलगुण कहते हैं।

१६. प्र०—गृहस्थों के उत्तर गुण कितने हैं ?

उ०—बारह हैं—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

---

१०. रत्न० श्रा०, श्लो० ४७।

११, १२. रत्न० श्रा०, श्लो० ५०।

१६. रत्न० श्रा०, श्लो० ५१।

१७. प्र०—व्रती किसे कहते हैं?

उ०—जो निःशल्य होकर देव-शास्त्र-गुरुकी साक्षी पूर्वक व्रतोंको धारण करता है वही व्रती कहा जाता है।

१८. प्र०—शल्य किसे कहते हैं?

उ०—शल्य कहते हैं कील काँटे को। कील काँटेकी तरह जो बातें मनुष्यके मनमें पीड़ा देती रहती हों, उन बातोंको भी शल्य कहते हैं।

१९. प्र०—शल्य कितने हैं?

उ०—शल्य तीन हैं—माया, मिथ्यात्व, निदान।

२०. प्र०—निःशल्य किसे कहते हैं?

उ०—जो इन तीनों शल्योंको हृदयसे निकाल देता है उसे निःशल्य कहते हैं। अर्थात् जो मायाचारसे दुनियाको ठगनेके लिये व्रत धारण करता है, या जो मिथ्या श्रद्धान रखते हुए व्रत धारण करता है, अथवा जो निदान अर्थात् भविष्यमें भोगोंकी प्राप्तिकी इच्छासे प्रेरित होकर व्रत धारण करता है वह व्रती नहीं है, ढोंगी है।

२१. प्र०—अणुव्रत किसे कहते हैं?

उ०—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पांचों पापोंके एक देश त्यागको अणुव्रत कहते हैं।

२२ प्र०—हिंसा किसे कहते हैं?

उ०—प्रमादके योगसे प्राणोंके घात करनेको हिंसा कहते हैं।

२३ प्र०—प्रमादका योग नहीं होनेपर हिंसा होती है या नहीं?

उ०—जिस मनुष्यके अन्दर प्रमादका योग नहीं है और जो यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करता है, उससे प्राणोंका घात हो जानेपर भी वहां हिंसा नहीं होती। और जिस मनुष्यके अन्दर प्रमादका योग है उससे किसी जीवका घात हो या न हो, वहां नियमसे हिंसा है। क्योंकि जिस [illegible] हिंसा है, वह नियमसे हिंसक है। अत: आत्मामें रागादि विकारोंका उत्पन्न होना ही हिंसा है और उनका न होना ही अहिंसा है।

२४ प्र०—हिंसाके कितने भेद हैं?

उ०—दो भेद हैं—एक संकल्पी हिंसा और दूसरी आरम्भी हिंसा। बिना अपराधके जान-बूझकर किसीकी हिंसा करनेको संकल्पी हिंसा कहते हैं। और कृषि आदि आरम्भसे होनेवाली हिंसाको आरम्भी हिंसा कहते हैं।

२५. प्र०—हिंसासे जो बचना चाहते हैं उन्हें सबसे प्रथम क्या करना चाहिये ?

उ०—उन्हें सबसे प्रथम मद्य मांस मधु और पांच उदुम्बर फलोंका सेवन छोड़ देना चाहिए।

२६. प्र०—मद्य सेवन क्यों बुरा है ?

उ०—मद्य (नशा) मनकी विचार शक्तिको कुंठित कर देता है, और उसके होनेपर मनुष्य कर्तव्य अकर्तव्यको भूल जाता है। और उसके भूल जानेपर निःशंक होकर हिंसा करता है। तथा मद्य स्वयं भी अनेक जीवोंकी योनि है अतः मद्य पीनेसे उन सबका घात हो जाता है।

२७. प्र०—मांस सेवन क्यों बुरा है ?

उ०—विना किसीकी जान लिये मांस तैयार नहीं होता। अतः मांस खानेसे हिंसाका होना अनिवार्य है।

२८. प्र०—स्वयं मरे हुए जीवका मांस खानेमें तो यह बात नहीं है ?

उ०—मांसके टुकड़ोंमें सूक्ष्म जीवोंकी उत्पत्ति होने लगती है। अतः जो मांसको खाना तो दूर, उसे छूता भी है वह असंख्य जीवोंका घातक होता है।

२९. प्र०—मधु सेवनमें क्या बुराई है ?

उ०—मधु मक्खियों और उनके अण्डोंका घात होता है। नई प्रणालीसे उत्पन्न किया गया मधु भी इस बुराईसे एकदम अछूता नहीं है।

३०. प्र०—पांच उदुम्बर फलोंके सेवनमें क्या बुराई है ?

उ०—पीपल, गूलर, पाकर, वट और कठूमरके फलोंमें स्थूल और सूक्ष्म त्रस जीव भरे होते हैं। इसीसे उदुम्बरको जन्तुफल भी कहते हैं। ये फल वृक्षके काष्टको फोड़कर उसके दूधसे उत्पन्न होते हैं। अतः जो इन फलोंको खाता है वह साक्षात् जन्तुओंको ही खाता है।

३१. प्र०—असत्य किसे कहते हैं ?

उ०—प्रमादके योगसे असत् कथन करनेको झूठ कहते हैं।

३२. प्र०—असत्य वचनके कितने भेद हैं ?

उ०—चार भेद हैं—वर्तमान वस्तुका निषेध करना पहला असत्य है। जैसे घरमें होते हुए भी यह कहना कि देवदत्त यहाँ नहीं है। अवर्तमान वस्तुको मौजूद बतलाना दूसरा असत्य है। कुछका कुछ बतलाना तीसरा असत्य है जैसे देवदत्त-को यज्ञदत्त बतलाना। और गर्हित सावद्य और अप्रिय वचन बोलना चौथा असत्य है।

३३. प्र०—गर्हित वचन किसे कहते हैं ?

उ०—किसीकी चुगली करना, हँसी उड़ाना, कठोर वचन बोलना आदि गर्हित वचन हैं।

३४ प्र० सावद्य वचन किसे कहते हैं ?

उ०—हिंसा आदिकी प्रेरणा करने वाले वचनोंको सावद्य वचन कहते हैं।

३५ प्र०—अप्रिय वचन किसे कहते हैं ?

उ०—जो वचन द्वेष, भय, खेद, बैर, शोक और कलह वगैरहको उत्पन्न करने वाले हों, उन्हें अप्रिय वचन कहते हैं।

३६ प्र०—चोरी किसे कहते हैं ?

उ०—प्रमादके योगसे बिना दी हुई वस्तुके ग्रहण करनेको चोरी कहते हैं।

३७. प्र०—चोरी करनेमें क्या बुराई है ?

उ०—धन मनुष्यका बाहरी प्राण है। अतः जो मनुष्य किसीके धनको हरता है वह उसके प्राणोंको हरता है।

३८ प्र०—अब्रह्म किसे कहते हैं ?

उ०—कामके वशीभूत होकर मैथुन सेवन करनेको अब्रह्म कहते हैं।

३९. प्र०—परिग्रह किसे कहते हैं ?

उ०—मोहके उदयसे उत्पन्न हुए ममत्व भावको (यह मेरा है यह मेरा है इस प्रकारके भावको) परिग्रह कहते हैं। अतः जिसके पास कुछ भी नहीं है किन्तु जिसके मनमें दुनिया भरकी तृष्णा मौजूद है वह परिग्रही है।

४०. प्र०—तो क्या धन वगैरह परिग्रह नहीं हैं ?

उ०—धन जमीन वगैरह भी परिग्रह हैं क्योंकि उनके [illegible] परिग्रहकी भावना पैदा होती है।

४१. प्र०—परिग्रहके कितने भेद हैं ?

उ०—संक्षेपसे परिग्रहके दो भेद हैं—एक अभ्यन्तर और दूसरा बाह्य।

४२. प्र०—अभ्यन्तर परिग्रहके कितने भेद हैं ?

उ०—चौदह भेद हैं—मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा (ग्लानि), क्रोध, मान, माया, लोभ।

४३ प्र०—बाह्य परिग्रहके कितने भेद हैं ?

उ०—दस भेद हैं—धन (गाय बैल वगैरह), धान्य (अनाज), क्षेत्र (खेत), वस्तु (मकान), हिरण्य (चाँदी), सुवर्ण (सोना), कुप्य (वस्त्र), भाण्ड (बरतन) दास और दासी।

४४. प्र०—अणुव्रतके कितने भेद हैं ?

उ०—पाँच भेद हैं—अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रह परिमाण अणुव्रत।

४५. प्र०—अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना, इन नौ संकल्पोंसे चलते फिरते जीवोंका घात न करनेको अहिंसाणुव्रत कहते हैं।

४६. प्र०—नौ संकल्प कौनसे हैं ?

उ०—'इस जीवको मैं मारता हूँ' यह कृत है। 'मारो मारो' यह कारित है। 'इसको यह ठीक मार रहा है' यह अनुमोदना है। इन तीनों ही अंगोंका न मनमें संकल्प करे, न वचनसे ही संकल्प करे और न हाथ वगैरहके संकेतसे ही संकल्प करे।

४७. प्र०—दो प्रकारकी हिंसामेंसे गृहस्थको कौन-सी हिंसा छोड़ना आवश्यक है ?

उ०—गृहस्थाश्रम विना आरम्भ किये नहीं चलता। और विना हिंसाके आरम्भ नहीं होता। अतः गृहस्थको संकल्पी हिंसा तो छोड़ ही देनी चाहिये और आरम्भी हिंसामें भी सावधानी बरतनी चाहिये।

४८. प्र०—अहिंसाणुव्रतका पूरी तरहसे पालन कौन कर सकता है ?

उ०—जो गृहस्थ सन्तोषी होता है और अल्प आरम्भ करता है और अल्प परिग्रही होता है वही अहिंसाणुव्रतका पूरी तरहसे पालन कर सकता है।

४९. प्र०—सत्याणुव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—स्थूल असत्यका न स्वयं बोलना और न दूसरेसे बुलवाना तथा यदि सत्य बोलनेसे अपने या दूसरेके प्राणों पर संकट आता हो तो सत्य भी न बोलना इसे सत्याणुव्रत कहते हैं।

५०. प्र०—स्थूल असत्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिससे घर बरबाद हो जाये या गाँव उजड़ जाये ऐसे असत्यको स्थूल असत्य कहते हैं। सत्याणुव्रती ऐसा असत्य नहीं बोलता।

५१. प्र०—आपत्तिमें सत्य न बोलनेकी छूट क्यों है ?

उ०—प्रधान व्रत अहिंसा है। बाकीके चार व्रत तो उसीकी रक्षाके लिये बाड़के तुल्य हैं। अतः जिस सत्य वचनसे अहिंसाका रक्षण न होकर घात होता हो वह सत्य वचन भी त्याज्य है।

१२. प्र०—तब तो अहिंसाणुव्रती शासक नहीं हो सकता क्या ?

उ०—अहिंसाणुव्रती ही अच्छा शासक हो सकता है क्योंकि वह शत्रु और मित्र दोनोंको अपराधके अनुसार समान रूपसे दण्ड देनेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध है। निरपराधीको दण्ड देना भी उतना ही बुरा है जितना अपराधीको दण्ड न देना। दण्डका उद्देश्य सुधार है पीड़न नहीं।

१३. प्र०—अचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—रखी हुई, गिरी हुई, या भूली हुई पराई वस्तुको न स्वयं लेना और न उठाकर दूसरेको देना अचौर्याणुव्रत है।

१४. प्र०—ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—पापके भयसे पराई स्त्री और वेश्याका न तो स्वयं सेवन करना और न दूसरोंसे सेवन कराना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इसका दूसरा नाम स्वदार सन्तोष भी है।

१५. प्र०—परिग्रह परिमाण अणुव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—अपने जीवन निर्वाहके लिये आवश्यक धन धान्य वगैरह का परिमाण करके उससे अधिककी चाह नहीं करना परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। यह व्रत मनुष्यकी इच्छा पर नियंत्रण लगाता है इससे इसे इच्छा परिमाण भी कहते हैं।

१६. प्र०—शील किन्हें कहते हैं ?

उ०—जैसे परकोटेसे नगरकी रक्षा होती है वैसे ही जिनसे अणुव्रतोंकी रक्षा हो उन्हें शील कहते हैं।

१७. प्र०—शीलके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—गुणव्रत और शिक्षाव्रत।

१८ प्र०—गुणव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—जो अणुव्रतोंका उपकार करें उनमें वृद्धि करें उन्हें गुणव्रत कहते हैं।

१९ प्र०—गुणव्रतके कितने भेद हैं ?

उ०—तीन भेद हैं, दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत और भोगोपभोग परिमाणव्रत।

७५. प्र०—शिक्षाव्रत कितने हैं ?

उ०—चार हैं—देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और अतिथि संविभाग या वैयावृत्य।

७६. प्र०—देशावकाशिक व्रत किसे कहते हैं ?

उ०—दिग्व्रतमें परिणाम किये हुए क्षेत्रके किसी हिस्सेमें कुछ समय तक सन्तोषपूर्वक रहनेका नियम करना देशावकाशिक व्रत है।

७७. प्र०—सामायिकव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—एकान्त स्थानमें मुनिकी तरह अपनी आत्माका ध्यान करनेवाला गृहस्थ जो कुछ समयके लिये हिंसा आदि पापोंका पूरी तरहसे त्याग करता है उसे सामायिकव्रत कहते हैं।

७८. प्र०—सामायिक कब करना चाहिये ?

उ०—यों तो आलस्य त्याग कर प्रतिदिन सामायिक करना चाहिये। किन्तु उपवास और एकाशनके दिन तो अवश्य ही करना चाहिये।

७९. प्र०—सामायिकसे क्या लाभ है ?

उ०—सामायिकमें सब बाह्य व्यापारोंसे मन, वचन, कायको हटाकर अन्तरात्माकी ओर लगाया जाता है उस समय न किसी प्रकारका आरम्भ होता है और न परिग्रहकी भावना ही रहती है। इसलिये गृहस्थ ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी साधुके ऊपर किसीने वस्त्र डाल दिये हैं।

८०. प्र०—सामायिकमें क्या विचारना चाहिये ?

उ०—जिस संसारमें हम बसते हैं उसके साथ अपने सम्बन्धोंका विचार करते हुए अपने मनमें समायी हुई मोहकी गांठको ही खोलनेका प्रयत्न करना चाहिये।

८१. प्र०—प्रोषधोपवास व्रत किसे कहते हैं ?

उ०—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको स्वेच्छापूर्वक चारों प्रकारके आहारका त्याग करना प्रोषधोपवास व्रत है।

८२. प्र०—प्रोषधोपवास व्रतकी क्या विधि है ?

उ०—सप्तमी और तेरसके दिन मध्याह्नकालमें अतिथियोंको भोजन करानेके बाद स्वयं भोजन करके गृहस्थको उपवासकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये। और एकान्त स्थानमें ठहरकर धर्म ध्यान पूर्वक अपना समय बिताना चाहिये।

अधिकतर स्वाध्याय करना चाहिये। यदि पूजन करना हो तो भावपूजा ही करना चाहिये। यदि द्रव्यपूजा करना चाहे तो प्रासुक द्रव्यसे पूजा करनी चाहिये। और रागके कारणोंसे बचना चाहिये। इस प्रकार सोलह पहर बिताकर नौमी या पन्द्रसके दिन मध्याह्न कालमे अतिथियोंको भोजन करानेके बाद अनासक्त होकर एक बार भोजन करना चाहिये।

८३. प्र०—प्रोषधोपवास शब्दका क्या अर्थ है ?

उ०—एक बार भोजन करनेको प्रोषध कहते हैं और चारो प्रकारके आहारका त्याग करनेको उपवास कहते है ? अतः प्रोषध पूर्वक उपवास करनेको प्रोषधोपवास कहते है।

८४. प्र०—उपवासके दिन क्या-क्या नहीं करना चाहिए ?

उ०—उपवासके दिन पांच पापोमेंसे किसी भी पापका विचार तक नहीं करना चाहिये। किसी तरहका कोई आरम्भ नहीं करना चाहिये। आभूषण, पुष्पमाला वगैरह नहीं पहनना चाहिये। अंजन नही लगाना चाहिये, नास नहीं लेनी चाहिये। और हो सके तो स्नान भी नहीं करना चाहिये।

८५. प्र०—अतिथि संविभागव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—शरीरको धर्मका साधन मानकर उसको बनाये रखनेके उद्देश्यसे जो भिक्षाके लिये सावधानतापूर्वक बिना बुलाये हुए श्रावकके घर जाता है उस पात्रको अतिथि कहते है। और प्रतिदिन श्रावक अपने लिये बनाये हुए भोजनमेंसे श्रद्धा, भक्ति और सन्तोषके साथ ऐसे अतिथिको विधिपूर्वक जो दान देता है उसे अतिथि संविभागव्रत कहते हैं। आचार्य समन्तभद्रने इस व्रतको वैयावृत्य नाम दिया है।

८६. प्र० वैयावृत्य किसे कहते हैं ?

उ०—गुणानुराग वश संयमी पुरुषोंके कष्टोंको दूर करना, उनकी सेवा करना, उन्हें दान देना, ये सब वैयावृत्य है।

८७. प्र०—पात्र किसे कहते हैं ?

उ० जहाजकी तरह जो अपने आश्रितोंको संसाररूपी समुद्रसे पार करता है उसे पात्र कहते है।

८८. प्र०—पात्र कितने प्रकारके होते हैं ?

उ०—पात्र तीन प्रकारके होते हैं उत्तम, मध्यम और जघन्य। महाव्रती साधु उत्तमपात्र है। देशव्रती श्रावक मध्यमपात्र है और अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र है।

८९. प्र०—दान देनेकी क्या विधि है ?

उ०—साधुको आहार दान देनेकी विधिके नौ प्रकार हैं—जब साधु अपने द्वारपर आवे तब भक्ति पूर्वक प्रार्थना करे—नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, ठहरिये, ठहरिये, ठहरिये। इसे प्रतिग्रह या पड़गाहना कहते हैं। जब वह मौनपूर्वक प्रार्थना स्वीकार कर ले तब उन्हें घरके भीतर ले जाकर ऊँचे आसन पर बैठा दे। फिर उनके चरण पखारे। फिर उनकी पूजा करे। फिर पंचांग नमस्कार करे। आहार देते समय मन, वचन और कायको निर्मल रक्खे। इसे मनशुद्धि, वचनशुद्धि और कायशुद्धि कहते हैं। नौवीं विधि अन्नशुद्धि है। बलपूर्वक शोधकर बनाये गये दोषोंसे रहित आहारका नाम अन्नशुद्धि है। इस प्रकार प्रतिग्रह आदि ५, मन, वचन और कायकी शुद्धता ३ और अन्नशुद्धि १ ये नौ आहार देनेकी विधियाँ हैं।

९०. प्र०—दानके कितने प्रकार हैं ?

उ०—दानके चार प्रकार हैं—पात्रदत्ति, समक्रियादत्ति, अन्वयदत्ति अथवा सकलदत्ति और दयादत्ति।

९१. प्र०—पात्रदत्ति किसे कहते हैं ?

उ०—पात्रको दान देनेका नाम पात्रदत्ति है।

९२. प्र०—पात्रदानके कितने भेद हैं ?

उ०—पात्रदानके चार भेद हैं—आहारदान, उपकरणदान, औषधदान और आश्रयदान। मोक्षके लिये प्रयत्नशील संयमी मुनिको शुद्ध मनसे निर्दोष भिक्षा देना आहार दान है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको बढ़ानेवाले शास्त्र, पीछी कमण्डलु वगैरह धर्मके उपकरण देना उपकरण दान है। योग्य औषध देना औषध दान है और उनके निवासके लिये श्रद्धापूर्वक वासस्थान देना आश्रय दान है।

९३. प्र०—समक्रियादत्ति किसे कहते हैं ?

उ०—जो व्रत आदि क्रियाओंमें अपने समान है ऐसे सधर्मी भाईको श्रद्धापूर्वक कन्या, भूमि, सुवर्ण आदि देना समक्रिया या समानदत्ति है।

९४. प्र०—अन्वयदत्ति अथवा सकलदत्ति किसे कहते हैं ?

उ०—अपने वंशको कायम रखनेके लिये अपने औरस या दत्तक पुत्रको धर्म और धनके साथ अपने कुटुम्बका सम्पूर्ण भार सौंपना अन्वयदत्ति अथवा सकलदत्ति है।

९५. प्र०—दयादत्ति किसे कहते हैं?

उ०—दीन दुःखी प्राणियोंका दुःख दूर करनेकी भावनासे उनके लिए भोजन औषध वस्त्र आदिकी व्यवस्था करना दयादत्ति है।

९६. प्र०—दान किसे कहते हैं?

उ०—कल्याणकी भावनासे अपने द्रव्यके देनेको दान कहते हैं।

९७ प्र०—अतिथिदानसे क्या लाभ है?

उ०—जैसे पानी खूनके दागको धो देता है वैसे ही अगारसे विरत अतिथियोंको आदर पूर्वक दिया हुआ दान घरके कार्योंसे संचित पापको भी धो देता है।

९८. प्र०—सल्लेखना किसे कहते हैं?

उ०—सम्यक् प्रकारसे शरीर और कषायोंके कृश करनेको सल्लेखना कहते हैं।

९९. प्र०—सल्लेखना कब की जाती है?

उ०—जब कोई ऐसा उपसर्ग आ जाये, दुर्भिक्ष पड़ जाये, या रोग हो जाये जिसका कोई प्रतीकार न हो अथवा बुढ़ापा आ जाये तब धर्मकी रक्षाके लिये शरीरका उत्सर्ग किया जाता है इसीका नाम सल्लेखना है।

१०० प्र०—सल्लेखनामें और समाधिमरणमें क्या अन्तर है?

उ०—सल्लेखना पूर्वक मरणका नाम ही समाधि मरण है।

१०१ प्र०—सल्लेखना करनेवाला आत्मघाती क्यों नहीं है?

उ०—धर्म नाशके कारण उपस्थित होनेपर शरीरको छोड़ देनेवाला आत्मघाती नहीं है, क्योंकि क्रोध आदि कषायोंके आवेशमें आकर जो विष आदिके द्वारा अपने प्राणोंका घात करता है वही आत्मघाती कहा जाता है।

१०२ प्र०—क्या शरीरकी रक्षा नहीं करना चाहिये?

उ०—शरीर धर्मका साधन है इसलिये उसकी रक्षा करना उचित है। किन्तु धर्म छोड़कर शरीरको बचाना ठीक नहीं है।

१०३. प्र०—समाधिमरणकी क्या विधि है?

उ०—राग, द्वेष, परिग्रह आदिकको छोड़कर शुद्ध मनसे सबसे क्षमा माँगे और सबको क्षमा कर दे। फिर स्वयं किये हुए, कराये हुए और

११५. प्र०—दिग्व्रतके अतिचार कौनसे हैं ?

उ०—दिग्व्रतके पांच अतिचार हैं—ऊर्ध्व व्यतिक्रम (ऊर्ध्व दिशामें किये हुए जानेके परिमाणका उल्लंघन करना), अधोव्यतिक्रम (नीचेकी दिशामें किये हुए जानेके परिमाणका उल्लंघन करना), तिर्यग्व्यतिक्रम (तिरछी दिशामें जानेके लिये किये हुए परिमाणका उल्लंघन करना), क्षेत्र वृद्धि (किये हुए क्षेत्रके परिमाणको वढ़ा लेना), स्मृत्यन्तराधान (किये हुए परिमाणको भूल जाना)।

११६. प्र०—अनर्थदण्डव्रतके अतिचार कौनसे हैं ?

उ०—कन्दर्प (हास्य मिश्रित अश्लील वचन वोलना), कौत्कुच्य (हास्य मिश्रित अश्लील वचनके साथ शरीरसे भी कुचेष्टा करना), मौखर्य (व्यर्थ वकवाद करना), असमीक्ष्य अधिकरण (विना विचारे प्रयोजनसे अधिक कार्य करना) और उपभोग परिभोग आनर्थक्य (भोग और उपभोगके साधनोंका प्रयोजनसे अधिक संचय करना)। ये पांच अतिचार अनर्थदण्ड व्रतके हैं।

११७. प्र०—भोग उपभोग परिमाणव्रतके अतिचार कौनसे ह ?

उ०—सचित्त आहार (सचित्त पुष्प फल आदिका आहार करना), सचित्त सम्बन्धाहार (सचित्त वस्तुसे स्पर्श हुए पदार्थका आहार करना), सचित्त सम्मिश्र आहार (सचित्त वस्तुसे मिली हुई वस्तुका आहार करना), अभिषव आहार (कामोत्तेजक वस्तुका आहार करना) और दुष्पक्व आहार (भली प्रकार न पके हुए अथवा देरसे पचनेवाले पदार्थोंका आहार करना) ये पांच अतिचार भोगोपभोग परिणाम व्रतके तत्त्वार्थ सूत्रमें कहे हैं। और विषयरूपी विषमें आदर भावका होना, भोगे हुए विषयोंका स्मरण करना, वर्तमानमें उपलब्ध विषयोंमें अति लोलुपता होना, भाविभोगोंकी चाह होना और भोग न भोगते हुए भी मनमें भोगोंको भोगनेकी-सी कल्पना करना ये पांच अतिचार समन्तभद्र स्वामीने रत्नकरंड श्रावकाचारमें कहे हैं।

११८. प्र०—देशव्रतके अतिचार कौनसे हैं ?

उ०—आनयन (मर्यादासे वाहरसे किसी वस्तुको मँगवाना), प्रेष्यप्रयोग (मर्यादासे वाहर किसीको भेजना), शब्दानुपात (मर्यादासे वाहर स्वयं न जाकर भी शब्दके द्वारा अपना काम करा लेना), रूपानुपात (अपना रूप दिखाकर मर्यादासे वाहर कोई काम कराना) और पुद्गल क्षेप (मर्यादासे वाहर ढेला आदि फेंककर अपना काम करा लेना) ये पांच देशव्रतके अतिचार हैं।

११९. प्र०—सामायिकव्रतके अतिचार कौनसे हैं ?

उ०—योग दुष्प्रणिधान (सामायिकके समय मनको चलायमान करना,

उ०—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तो श्रावक हो ही सकते हैं। जिनका रहन-सहन स्वच्छ है, जो मद्य आदिका सेवन नहीं करते और शरीर शुद्धि पूर्वक भोजन आदि करते हैं ऐसे शूद्र भी श्रावक धर्मका पालन कर सकते हैं।

१२५. प्र०—श्रावकके कितने भेद हैं ?

उ०—श्रावकके तीन भेद हैं—पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक।

१२६. प्र०—पाक्षिक श्रावक किसे कहते हैं ?

उ०—जो अभ्यास रूपसे श्रावक धर्मका पालन करता है उसे पाक्षिक श्रावक कहते हैं।

१२७. प्र०—पाक्षिक श्रावकका क्या कर्तव्य है ?

उ०—मद्य, मांस, मधु, पांच उदुम्बर फल और रात्रि भोजनका त्याग, पंच परमेष्ठीकी भक्ति, जीवोंपर दया और छानकर पानी पीना यह संक्षेपमें पाक्षिक श्रावकका मुख्य कर्तव्य है।

१२८. प्र०—नैष्ठिक श्रावक किसे कहते हैं ?

उ०—जो निरतिचार श्रावक धर्मका पालन करता है उसे नैष्ठिक श्रावक कहते हैं।

१२९. प्र०—साधक श्रावक किसे कहते हैं ?

उ०—जो श्रावक धर्मको पूर्ण करके आत्म ध्यानमें तत्पर होकर समाधि मरण करता है उसको साधक श्रावक कहते हैं।

१३०. प्र०—नैष्ठिक श्रावकके कितने पद हैं ?

उ०—नैष्ठिक श्रावक के ग्यारह पद हैं—दर्शनिक, व्रतिक, सामयिक, प्रोषधोपवासी, सचित्त विरत, रात्रिभुक्तिव्रत, अब्रह्म विरत, आरम्भ विरत, परिग्रह विरत, अनुमति विरत और उद्दिष्ट विरत। उन ग्यारह पदोंको 'प्रतिमा' नामसे कहा जाता है।

१३१. प्र०—दर्शनिक प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उ०—जो विशुद्ध सम्यग्दृष्टी संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त होकर, पंच परमेष्ठीके चरणोंका आराधन करता हुआ शरीर के निर्वाहके लिए न्याय-पूर्वक आजीविका करता है, और मूल गुणोंमें अतिचार नहीं लगाता तथा आगेके व्रतिक आदि पदोंको धारण करनेके लिए उत्सुक रहता है, उसे दर्शनिक श्रावक कहते हैं।

१३२. प्र०—दर्शन प्रतिमाका धारी क्या-क्या काम नहीं कर सकता ?

उ०—दार्शनिक श्रावक मन वचन काय से मद्य मांस और मधु वगैरहका व्यापार न स्वयं करे, न दूसरोंसे करावे और न उसकी अनुमोदना करे। मद्य मांस का सेवन करनेवाले की पुरुषोंके साथ भोजन आदि न करे। सब प्रकारके अचार मुरब्बेका त्याग करे। चमड़ेके बरतनमें रखे हुए पानी घी तेल वगैरहका उपयोग न करे। अजान फलोंको नहीं खावे, रातमें औषधि पानी आदि भी न ले। पानीको गन्दे और छेदवाले वस्त्रसे न छाने, एक बार छने हुए पानीको दो मुहूर्तके बाद पुनः छानकर ही काममें लावे। बिलछानीको उसी जलाशयमें डाले जिससे जल लिया हो। जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, वेश्या सेवन करना, शिकार खेलना, परस्त्री सेवन करना और चोरी करना इन सात व्यसनोंका मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे त्याग कर दे। जिस वस्तुको बुरा जानकर स्वयं छोड़े उसका प्रयोग दूसरोंके प्रति भी न करे।

१३३. प्र०—व्रतिक प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उ०—पहली प्रतिमाके कर्तव्योंका पूर्ण रूपसे पालन करते हुए जो निःशल्य होकर पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंका निरतिचार पालन करता है उसे व्रतिक कहते हैं।

१३४ प्र०—सामायिक प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उ०—पहली और दूसरी प्रतिमा के कर्तव्योंका पूर्ण रूपसे पालन करते हुए जो तीनों कालोंमें सामायिक करते समय किसी भी प्रकारका उपसर्ग और परीषह आने पर भी साम्य भाव से नहीं डिगता वह सामायिक प्रतिमाधारी कहलाता है।

१३५ प्र०—सामायिककी क्या विधि है ?

उ०—प्रतिदिन सबेरे दोपहर और सन्ध्याको एकान्त स्थानमें वस्त्रादि द्वारा पहले पूरब या उत्तर दिशाको मुख करके दोनों हाथ लटकाकर खड़े हुए दृष्टि नासिकाके अग्र भाग पर रक्खे। इसे कायोत्सर्ग कहते हैं। फिर तीन बार णमोकार मंत्र पढ़कर साष्टांग नमस्कार करे। फिर उसी तरह खड़े होकर [illegible] दोनों हाथ जोड़ तीन आवर्त और एक शिरोनति करे। [illegible] हाथ जोड़कर जुड़े हुए हाथोंको बाईं ओरसे दाईं ओर [illegible] घुमाना, इसे आवर्त कहते हैं। फिर सामने अपना मस्तक [illegible] जुड़े हुए हाथों पर रक्खे। इसे शिरोनति कहते हैं। पूर्व या उत्तर दिशामें इस प्रकार करके फिर उसी दिशासे दाहिने हाथकी दिशाकी ओर मुड़ और पहलेकी तरह

तरह नौ या तीन वार णमोकार मंत्र पढ़कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करे। इसी प्रकार चारों दिशाओंमें करके पहले जिस दिशाकी ओर मुख किया था उसी दिशाकी तरफ मुँह करके पद्मासन से बैठ जाय और फिर णमोकार मंत्रकी कमसे कम एक माला जपे। फिर सामायिक पाठ आदि पढ़े। आत्म-चिन्तन करे। अन्तमें खड़े होकर कायोत्सर्ग करे और नौ वार णमोकार मंत्र पढ़कर साष्टांग दण्डवत् करे।

१३६. प्र०—प्रोषधोपवास प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उ०—पहली तीन प्रतिमाओंका निर्दोष पालन करते हुए प्रत्येक मासके चारों पर्वोमें अपनी शक्तिको न छिपाकर जो नियम पूर्वक उपवास धारण करता है और उपवासके समय (सोलह पहर तक) अपने साम्यभावसे च्युत नहीं होता है वह प्रोषध प्रतिमावाला है।

१३७. प्र०—प्रोषधोपवास व्रत और प्रोषधोपवास प्रतिमामें क्या अन्तर है ?

उ०—दूसरी प्रतिमामें प्रोषधोपवास शील रूप अर्थात् अणुव्रतोंके रक्षकके रूपमें सहायकव्रत है, मुख्यव्रत नहीं है। किन्तु चौथी प्रतिमामें वह मुख्यव्रत हो जाता है। यही वात सामायिकव्रत और सामायिक प्रतिमाके सम्बन्धमें जाननी चाहिये।

१३८. प्र०—सचित्त त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उ०—पहली चारों प्रतिमाओंका निर्दोष पालन करते हुए जो दयालु सचित्त अंकुर, कन्द, मूल, फल, पत्र, बीज, पानी, नमक वगैरह नहीं खाता अर्थात् सचित्त भक्षण नहीं करता वह सचित्त विरत प्रतिमावाला है।

१३९. प्र०—सचित्त किसे कहते हैं ?

उ०—जीव सहित हरे पत्ते शाक वगैरहको सचित्त कहते हैं।

१४०. प्र०—सचित्त द्रव्यसे पूजन करना योग्य है वा नहीं ?

उ०—पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी प्रतिमाके धारक तो सचित्त द्रव्यसे भी पूजन कर सकते हैं किन्तु पांचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं प्रतिमाके धारी अचित्त द्रव्यसे ही पूजन करते हैं क्योंकि इन चारोंके सचित्तका त्याग है। और नौंवी, दसवीं तथा ग्यारहवीं प्रतिमाके धारी भावपूजा ही करते हैं।

१४१. प्र०—छना हुआ जल सचित्त है या अचित्त ?

उ०—छना हुआ जल सचित्त ही है क्योंकि उसमें एकेन्द्रिय जलकायिक जीव विद्यमान हैं। ऐसा जल चतुर्थ प्रतिमा पर्यन्त ही ग्रहण करनेके योग्य है।

सचित्त त्यागी गृहस्थ और मुनियोंके योग्य नहीं है। अतः सेवन करनेसे दो घड़ी पहले उस जलमें हरड़ या लौंगका चूर्ण आदि तीक्ष्ण वस्तु मिला देनी चाहिये या उसे आग पर तपा लेना चाहिये।

१४२. प्र०—रात्रिभक्त व्रत प्रतिमाका क्या स्वरूप है ?

उ०—जो मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे दिनमें मैथुनका त्याग करता है वह छठी प्रतिमाका धारी है। अधिकांश श्रावकाचारोंमें छठी प्रतिमाका यही स्वरूप बतलाया है किन्तु स्वामी समन्तभद्रने रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है कि जो रातमें अन्न, पान (पीने योग्य वस्तु) खाद्य (लड्डू वगैरह) और लेह्य (रबड़ी वगैरह) चारों प्रकारके आहारका त्याग करता है वह रात्रिभक्तव्रती श्रावक है।

१४३. प्र०—ब्रह्मचर्य प्रतिमाका क्या स्वरूप है ?

उ०—पूर्वोक्त छै प्रतिमाओंमें कहे गये संयमके अभ्याससे अपने मनको वशमें कर लेनेवाला जो श्रावक मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे सम्पूर्ण स्त्रियोंको कभी भी नहीं भोगता वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाका धारी कहा जाता है।

१४४. प्र०—आरम्भ विरत प्रतिमाका क्या स्वरूप है ?

उ०—जो पहली सात प्रतिमाओंका निर्दोष पालन करते हुए गृह सम्बन्धी आरम्भका सदाके लिये त्याग कर देता है उसे आरम्भत्याग प्रतिमाका धारी कहते हैं।

१४५. प्र०—आरम्भ किसे कहते हैं ?

उ०—हिंसाका कारण होनेसे खेती, नौकरी, व्यापार वगैरहको आरम्भ कहते हैं।

१४६. प्र०—परिग्रह त्याग प्रतिमाका क्या स्वरूप है ?

उ०—पहलेकी आठ प्रतिमाओंका पूर्ण [illegible] पालन करते हुए [illegible] दस प्रकारके बाह्य परिग्रह [illegible] है। और [illegible] परिग्रहको छोड़ देता है और [illegible] उसे परिग्रहत्याग प्रतिमाका धारी श्रावक कहते हैं।

१४७. प्र०—अनुमति त्याग प्रतिमाका क्या स्वरूप है ?

उ०—पूर्वोक्त नौ प्रतिमाओंका पालन करते हुए [illegible] आदि व्यापार और विवाह आदि [illegible] उसे अनुमति त्याग प्रतिमाका धारी कहते हैं।

१४८. प्र०—उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाका क्या स्वरूप है ?

उ०—पहलेकी दस प्रतिमाओंका पालन करते हुए जो अपने उद्देश्यसे बनाये गये भोजन, शय्या, आसन आदिका भी त्याग कर देता है उसे उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाका धारी श्रावक कहते हैं।

१४९. प्र०—उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाके कितने भेद हैं ?

उ०—उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी श्रावक दो प्रकारके होते हैं—प्रथम और द्वितीय। उत्तर कालमें प्रथम क्षुल्लक कहा जाने लगा और दूसरा ऐलक।

१५०. प्र०—प्रथम क्षुल्लकका क्या स्वरूप है ?

उ०—क्षुल्लक सफेद लंगोटी और चद्दर रखे और कैंची या छुरेसे मूंछ दाढ़ी और सिरके बालोंको बनवाये। बैठते समय, सोते समय या पुस्तक आदि उठाते-धरते समय मृदु वस्त्र आदिसे जीवोंकी विराधनाको बचावे। और प्रत्येक मासकी दो अष्टमी और दो चतुर्दशीको उपवास अवश्य करे।

१५१. प्र०—क्षुल्लककी भिक्षाकी क्या विधि है ?

उ०—क्षुल्लक भी दो प्रकारके होते हैं—एक भिक्षा नियमवाले और अनेक भिक्षा नियमवाले। अनेक भिक्षा नियमवाला क्षुल्लक अपने हाथमें पात्र लेकर भिक्षाके लिए निकले और श्रावकके घर जाकर 'धर्मलाभ' कहकर भिक्षाकी याचना करे। अथवा मौन पूर्वक श्रावकके आंगनमें खड़ा होकर चला आवे। और दूसरे घर जावे। इस तरह भिक्षा माँगते समय यदि बीचमें कोई श्रावक अपने घर पर भोजन करनेकी प्रार्थना करे तो पहले भिक्षा में प्राप्त भोजनको शोधकर खानेके बाद यदि आवश्यकता हो तो उससे ले ले। यदि कोई बीचमें न टोके तो उदरपूर्तिके लिए आवश्यक भिक्षा प्राप्त होनेतक भिक्षाके लिए श्रावकोंके घर जावे और फिर जहाँ प्रासुक जल मिले वहीं शोधकर भोजन कर ले। भोजन कर चुकने पर भिक्षापात्रको स्वयं ही माँज धोकर साफ कर। फिर गुरुके पास जाकर दूसरे दिन आहारको निकलनेतक के लिए चारों प्रकारके आहारका त्याग करे तथा आहारके लिए जानेके समयसे लेकर वापिस आनेतक जो कुछ प्रमाद हुआ हो उसकी गुरुके सामने आलोचना करे। जिनके घरके भोजनका नियम है वे मुनिराजके भोजनके पश्चात् श्रावकके घर जाकर भोजन करें और यदि भोजन न मिले तो जरूर ही उपवास करें।

१५२. प्र०—दूसरे ऐलकका क्या स्वरूप है ?

उ०—ऐलक केवल लंगोटी ही रखता है, खण्ड वस्त्र नहीं रखता। केश लोंच करता है और मुनियोंके समान पीछी कमंडलु आदि उपकरण रखता है।

तथा मुनियोंके समान ही अपने हाथ रूपी पात्रमें श्रावकोंके द्वारा दिये हुए भोजनको शोधकर खाता है। शेष क्रियाएँ क्षुल्लकके ही समान हैं।

१५३. प्र०—उक्त ग्यारह प्रतिमाओंमें जघन्य आदि भेद किस प्रकार हैं?

उ०—पहले छै प्रतिमाधारी श्रावक जघन्य श्रावक हैं और गृहस्थ कहलाते हैं, सात, आठ और नौवी प्रतिमा धारक श्रावक मध्यम श्रावक हैं और वर्णी या ब्रह्मचारी कहलाते हैं। तथा दसवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाधारक श्रावक उत्कृष्ट श्रावक हैं और भिक्षु कहे जाते हैं। ये सब परस्परमें मिलनेपर एक दूसरेसे 'इच्छाकार' कहकर अभिवादन करते हैं।

१५४ प्र०—देशविरती श्रावकोंके लिए कौन-कौन कार्य निषिद्ध हैं?

उ०—दिनमें प्रतिमायोग धारण करना (नग्न होकर कायोत्सर्ग करना), वीरचर्या (मुनिके समान गोचरी करना), त्रिकाल योग (गर्मीमें पर्वतके शिखर पर, बरसातमें वृक्षके नीचे, और सर्दीमें नदी किनारे ध्यान करना), सिद्धान्त शास्त्र अर्थात् द्वादशांगका और रहस्य अर्थात् प्रायश्चित्त शास्त्रका अध्ययन, ये कार्य देशविरती श्रावकोंको करनेका अधिकार नहीं है।

१५५. प्र०—संयत किसे कहते हैं?

उ०—जो पांच समिति और तीन गुप्तियोंका पालक है, पांचों इन्द्रियोंको वशमें रखता है, कषायोंको जिसने जीत लिया है और जो दर्शन और ज्ञानसे पूर्ण है उस श्रमणको संयत या संयमी कहते हैं।

१५६. प्र०—श्रमण किसे कहते हैं?

उ०—जो शत्रु और मित्रमें, सुख और दुःखमें, निन्दा और प्रशंसामें, स्वर्ण और पाषाणमें तथा जीवन और मरणमें समभाव रखता है वही श्रमण है।

१५७ प्र०—जो श्रमण होना चाहता है उसे क्या करना चाहिये?

उ०—अपने कुटुम्बियोंसे पूछकर [illegible] और [illegible] गुणवान आचार्यके पास जावे और उन्हें नमस्कार करके प्रार्थना करे कि मुझे शुद्ध आत्म तत्त्वकी प्राप्तिके लिये दीक्षा दो। यदि आचार्य [illegible] [illegible] 'मैं किसी दूसरेका नहीं हूँ [illegible]', [illegible] न कोई पदार्थ मेरा है और न मैं किसी पदार्थका हूँ [illegible] निर्ग्रन्थ लिंग धारण कर ले।

१५८ प्र०—लिंगका क्या स्वरूप है?

उ०—लिंग कहते हैं चिह्नको जिससे [illegible] पहचान होती है। इसके दो भेद हैं—बाह्य लिंग और अन्तरंग लिंग। [illegible]

१७१. प्र०—उत्सर्ग समिति किसे कहते हैं ?

उ०—जन्तु रहित एकान्त स्थानको देखभाल कर मलमूत्रादि त्यागना उत्सर्ग समिति है।

१७२. प्र०—आवश्यक किसे कहते हैं ?

उ०—रोग आदिसे ग्रस्त होने पर भी जो कर्म प्रतिदिन किया जाता है मुनिके उस कर्तव्य कर्मको आवश्यक कहते हैं।

१७३ प्र०—आवश्यकके कितने भेद हैं ?

उ०—आवश्यकके छै भेद हैं—सामायिक, स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग।

१७४ प्र०—सामायिक किसे कहते हैं ?

उ०—प्रिय और अप्रिय वस्तुमें राग और द्वेपके न करनेको सामायिक कहते हैं अर्थात् साम्य भावका नाम ही सामायिक है।

१७५. प्र०—सामायिकके कितने प्रकार हैं ?

उ०—सामायिक के छै प्रकार हैं—नाम सामायिक, स्थापना सामायिक, द्रव्य सामायिक, क्षेत्र सामायिक, काल सामायिक और भाव सामायिक।

१७६. प्र०—नाम सामायिक किसे कहते हैं ?

उ०—अपने अच्छे या बुरे नामोंको सुनकर राग द्वेप नहीं करना नाम सामायिक है।

१७७. प्र०—स्थापना सामायिक किसे कहते हैं ?

उ०—शास्त्रमें बतलाये गये माप वगैरहके अनुसार स्थापित मनोहर प्रतिमामें अथवा उससे विपरीत प्रतिमामें राग द्वेष नहीं करना स्थापना सामायिक है।

१७८. प्र०—द्रव्य सामायिक किसे कहते हैं ?

उ०—सुवर्ण और मिट्टी आदि द्रव्योंमें समदर्शी होना द्रव्य सामायिक है।

१७९. प्र०—क्षेत्र सामायिक किसे कहते हैं ?

उ०—मनोहर उद्यान और भयानक जंगलमें समभाव होना क्षेत्र सामायिक है।

१८०. प्र०—काल सामायिक किसे कहते हैं ?

उ०—प्रिय या अप्रिय प्रतीत होनेवाले वसन्त ग्रीष्म आदि ऋतुओंमें, दिन रातमें और कृष्ण शुक्ल पक्षोंमें राग द्वेपका न होना काल सामायिक है।

२०७. प्र० — नाम प्रत्याख्यान वगैरहका क्या स्वरूप है ?

उ०—जो नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव कल्याणकारी नहीं है उसका सेवन मुमुक्षुको नहीं करना चाहिये ।

२०८. प्र० —प्रत्याख्यान करनेकी क्या विधि है ?

उ०—प्रत्याख्यान विनय, अनुभाषा, अनुपालन और परिणामसे शुद्ध होना चाहिये ।

२०९. प्र०—विनयशुद्ध प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उ०—जो प्रत्याख्यान कृतिकर्म, औपचारिक विनय, ज्ञान विनय, दर्शन विनय और चारित्र विनयसे युक्त होता है वह विनय शुद्ध प्रत्याख्यान है ।

२१०. प्र०—कृतिकर्म किसे कहते हैं ?

उ० –सिद्ध भक्ति, योग भक्ति और गुरु भक्ति पूर्वक कायोत्सर्ग करनेको कृतिकर्म कहते हैं ।

२११. प्र०—अनुभाषा शुद्ध प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उ०—गुरुने प्रत्याख्यानके पाठका जैसा उच्चारण किया हो, वैसा ही शुद्ध उच्चारण करना अनुभाषा शुद्ध प्रत्याख्यान है ।

२१२. प्र० –अनुपालन शुद्ध प्रत्याख्यानका क्या स्वरूप है ?

उ०—रोग, उपसर्ग, थकान, दुर्भिक्ष, वर्षाकाल, राज्यविप्लव और भयानक अटवी वगैरहमें भी प्रत्याख्यानका अनुपालन करना, उसको भंग नहीं होने देना अनुपालन शुद्ध प्रत्याख्यान है ।

२१३. प्र०—परिणाम विशुद्ध प्रत्याख्यानका क्या स्वरूप है ?

उ०—प्रत्याख्यानका रागपरिणाम या द्वेष परिणामसे दूषित न होना परिणाम विशुद्ध प्रत्याख्यान है ।

२१४. प्र०—कायोत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उ०—दोनों चरणोंके बीचमें चार अंगुलका अन्तर रखते हुए दोनों हाथों-को नीचे लटकाकर निश्चल खड़े होना और शरीरसे ममत्व न करना कार्योत्सर्ग है ।

२१५. प्र० —कायोत्सर्ग किसलिये किया जाता है ?

उ०—मुमुक्षु मनुष्य निद्रा पर विजय प्राप्त करके राग, द्वेष, भय, मद आदिके द्वारा व्रतोंमें लगे हुए अतिचारोंकी विशुद्धिके लिये, कर्मोंकी निर्जराके लिये और तपकी वृद्धिके लिए कार्योत्सर्ग करता है ।

प्रतिदिन प्रातःको रातकी अन्तिम तीन घड़ी और दिनकी आदि तीन घड़ी और शामको दिनकी अन्तिम तीन घड़ी और रातकी आदि तीन घड़ी तथा दोपहरको छै घड़ी कृतिकर्म करना चाहिये।

२२२. प्र०—कृतिकर्मके योग्य स्थान और पीठ कौन-सा है ?

उ०—जहाँ संक्लेशके कारण न हों, परीषह उपसर्गके कारण न हों ऐसा एकान्त शान्त और रमणीक स्थान कृतिकर्मके योग्य है। और जिसमें खटमल वगैरह न हों, कीलें न उठी हों, छिद्र न हों, बैठनेसे चर्र-मर्र न करता हो, जिसका स्पर्श कष्ट दायक न हो, ऐसा तृण काठ या पाषाणका पीठ कृतिकर्मके योग्य है।

२२३. प्र०—कृतिकर्मके योग्य आसन कौन-सा है ?

उ०—कृतिकर्मके योग्य तीन आसन हैं—पद्मासन, पर्यङ्कासन और वीरासन। जिसमें दोनों चरण दोनों जंघाओंपर रखे हों वह पद्मासन है। जिसमें एक जंघाके ऊपर दूसरी जंघा रखी हो वह पर्यङ्कासन है। और जिसमें दोनों चरण घुटनोंसे ऊपर दोनों सांथलोंपर रखे हों वह वीरासन है। कमजोर मनुष्य इस वीरासनको नहीं लगा सकते।

२२४. प्र०—कृतिकर्मके योग्य मुद्रा कौन-सी है ?

उ०—कृतिकर्मके योग्य चार मुद्राएँ हैं—जिनमुद्रा, योगमुद्रा, वन्दनामुद्रा और मुक्ताशुक्ति मुद्रा।

२२५. प्र०—जिन मुद्रा किसे कहते हैं ?

उ०—दोनों पैरोंके बीचमें चार अंगुलका अन्तर रखते हुए दोनों हाथोंको नीचे लटकाकर खड़ा होना जिनमुद्रा है।

२२६. प्र०—योग मुद्रा किसे कहते हैं ?

उ०—पद्मासन, पर्यङ्कासन या वीरासन लगाकर गोदमें बायीं हथेलीके ऊपर दायीं हथेली रखना योगमुद्रा है।

२२७. प्र०—वन्दना मुद्रा किसे कहते हैं ?

उ०—दोनों हाथोंको मुकुलित करके दोनों कोहनियोंको पेटपर रखकर खड़ा होना वन्दनामुद्रा है।

२२८. प्र०—मुक्ताशुक्ति मुद्रा किसे कहते हैं ?

उ०—दोनों हाथोंको जोड़कर और दोनों कोहनियोंको पेटपर रखकर खड़े होना मुक्ताशुक्ति मुद्रा है।

२३६. प्र०—साधुके भोजनकी क्या विधि है ?

उ०—दिनके आदि और अन्तकी तीन-तीन घड़ी छोड़कर दिनके मध्यमें, विना किसी सहारेके खड़े होकर तथा छियालीस दोष बचाकर विधिपूर्वक दिये हुए नौ कोटिसे शुद्ध आहारको एक बार अपने हाथ रूपी पात्रमें ग्रहण करना चाहिये।

२३७. प्र०—भोजनके छियालीस दोष कौनसे हैं ?

उ०—१६ उद्गम दोष हैं, १६ उत्पादन दोष हैं, १० अशन अथवा एषणा दोष हैं और चार अंगार आदि दोष हैं। इन दोषोंको बचाकर ही साधुको भोजन करना चाहिये।

२३८. प्र०—उद्गम दोष कौनसे हैं ?

उ०—जो दोष दाताकी ओरसे होते हैं वे उद्गम दोष कहे जाते हैं। वे सोलह हैं—उद्दिष्ट, साधिक, पूति, मिश्र, प्राभृतक, वलि, न्यस्त, प्रादुष्कार, क्रीत, प्रामित्य, परिवर्तित, निषिद्ध, अभिहृत, उद्भिन्न, अछेद्य और मालारोहण।

२३९. प्र०—उद्दिष्ट दोष किसे कहते हैं ?

उ०—देवता, दीन मनुष्य और कुलिंगियों वगैरहके उद्देशसे वनाया गया भोजन उद्दिष्ट दोषसे दूषित है।

२४०. प्र०—साधिक दोष किसे कहते हैं ?

उ०—साधुको देखकर अपने लिये पकते हुए भोजनमें साधुके उद्देशसे और अन्न मिला देना साधिक दोष है।

२४१. प्र०—पूतिदोष किसे कहते हैं ?

उ०—प्रासुक द्रव्यमें अप्रासुक द्रव्य मिला देना पूति दोष है।

२४२. प्र०—मिश्रदोष किसे कहते हैं ?

उ०—पाखण्डियों और गृहस्थोंके साथ-साथ मुनियोंको देनेकी कल्पनासे तैयार किया गया प्रासुक भोजन भी मिश्र दोषसे दूषित है।

२४३. प्र०—प्राभृतक दोष किसे कहते हैं ?

उ०—जो भोजन जिस समयके लिए नियत है उसे उस समय न देकर पहले या पश्चात् देना प्राभृतक दोष है।

२४४. प्र०—वलिदोष किसे कहते हैं ?

उ०—देवता या पितरोंके लिए वनाये गये भोजनमेंसे शेष बचा भोजन

२५२. प्र०—उद्भिन्न दोष किसे कहते हैं ?

उ०—जो घी गुड़ वगैरह डब्बेमें बन्द हो या शीलबन्द हो, उसे उघाड़कर देना उद्भिन्न दोष है। क्योंकि ऐसी वस्तुमें चींटी वगैरह घुस सकती हैं।

२५३. प्र०—अच्छेद्य दोष किसे कहते हैं ?

उ०—साधुओंके भिक्षा-श्रमको देखकर यदि राजा अथवा चोर गृहस्थोंसे कहे कि यदि तुम साधुओंको भिक्षा नहीं दोगे तो तुम्हारा द्रव्य चुरा लेंगे या तुम्हें गांवसे निकाल देंगे। इस प्रकार गृहस्थोंको डरा धमकाकर दिलवाया हुआ अच्छेद्य दोषसे दूषित है।

२५४. प्र०—मालारोहण दोष किसे कहते हैं ?

उ०—सीढ़ियोंके द्वारा घरके ऊपरकी मंजिलपर चढ़कर वहाँ रखा हुआ भोज्य लाकर साधुको देना मालारोहण दोष है। ये सोलह उद्गम दोष हैं।

२५५. प्र०—उत्पादन दोष कौनसे हैं ?

उ०—धात्री, दूत, निमित्त, आजीव, वनीपक, क्रोध, मान, माया, लोभ, पूर्व स्तवन, पश्चात् स्तवन, चिकित्सा, विद्या, मंत्र, चूर्ण और मूलकर्म ये १६ उत्पादन दोष हैं।

२५६. प्र०—धात्रीदोष किसे कहते हैं ?

उ०—धायके पांच काम होते हैं—बच्चेको नहलाना, कपड़े पहनाना, खिलाना, दूध पिलाना और सुलाना। इन पांच कर्मोंका उपदेश देनेसे प्राप्त हुए आहारको यदि साधु ग्रहण करता है तो वह धात्री दोष है।

२५७. प्र०—दूत नामक दोष किसे कहते हैं ?

उ०—किसी साधुको जाता हुआ देखकर किसी गृहस्थने कहा—महाराज! उस गांवमें मेरे सम्बन्धी रहते हैं उनसे मेरा सन्देश कह देना। वह साधु उस गांवमें पहुँचकर उस गृहस्थके सम्बन्धीसे उसका सन्देश कह देता है। वह सम्बन्धी यदि इससे सन्तुष्ट होकर साधुको दान देता है और साधु उस दानको ले लेता है तो यह दूत नामक दोष है।

२५८. प्र०—निमित्त दोष किसे कहते हैं ?

उ०—किसीके शारीरिक चिह्नों आदिको देखकर और उनका शुभाशुभ फल बतलाकर प्राप्त हुए आहारको यदि साधु ग्रहण करता है तो यह निमित्त दोष है।

२५९. प्र०—वनीपक दोष किसे कहते हैं ?

उ०—जो किसीके वशमें न हो उसे उसके वशमें करके और वियुक्त हुए स्त्री पुरुषोंका परस्परमें मेल कराकर आहार प्राप्त करना मूलकर्म दोष है। ये १६ उत्पादन दोष हैं।

२६९. प्र०—दस अशन दोष कौनसे हैं ?

उ०—शंकित, पिहित, म्रक्षित, निक्षिप्त, छोटित, अपरिणत, साधारण, दायक, लिप्त और मिश्र ये दस अशन दोष हैं।

२७०. प्र०—शंकित दोष किसे कहते हैं ?

उ०—यह भोज्य वस्तु खाने-पीनेके योग्य है अथवा नहीं है इस प्रकारकी शंकाके होते हुए भी उसे खा लेना शंकित दोष है।

२७१. प्र०—पिहित दोष किसे कहते हैं ?

उ०—जो भोजन पान सचित्त द्रव्यसे अथवा भारी अचित्त द्रव्यसे ढका हुआ हो और उसके आवरणको हटाकर मुनिको दिया जाये तो पिहित नामका अशन दोष है।

२७२. प्र०—म्रक्षित दोष किसे कहते हैं ?

उ०—घी तेल आदिसे लिप्त हाथ, वरतन अथवा कछूके द्वारा दिया हुआ भोजन ग्रहण करनेसे म्रक्षित नामका अशन दोष होता है।

२७३. प्र०—निक्षिप्त दोष किसे कहते हैं ?

उ०—सचित्त पृथिवी, सचित्त जल, सचित्त अग्नि, हरित काय, उगनेकी शक्तिसे युक्त गेहूं वगैरह बीज द्रव्य और दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवोंके ऊपर रखा हुआ आहार निक्षिप्त दोषसे दूषित है।

२७४. प्र०—छोटित दोष किसे कहते हैं ?

उ०—भोज कराते समय बहुत-सा अन्न नीचे गिराना, अथवा परोसते समय मठा दूध आदि का नीचे टपकना, अथवा मुनि का छिद्र सहित हाथों से मठा आदि को नीचे गिराते हुए भोजन करना, अथवा हथेलियों को अलग करके भोजन करना और जो न रुचे उसे छोड़कर जो रुचे उसे खाना, ये पाँच प्रकार का छोटित दोष है।

२७५. प्र०—अपरिणत दोष किसे कहते हैं ?

उ०—हाड़ के चूर्ण वगैरह के द्वारा जिस जल का रूप रस और गन्ध बदल न गया हो उसे अपरिणत कहते हैं। ऐसा जल मुनियों को नहीं लेना चाहिये।

२७६. प्र०—साधारण अथवा संव्यवहरण दोष किसे कहते हैं ?

उ०—परस्परमें विरुद्ध वस्तुओंको मिलाकर भोजन करना, जैसे गर्ममें ठंढा और ठंढेमें गर्म मिलाना, रूखेमें चिकना मिलाना और चिकनेमें रूखा मिलाना अथवा वैद्यक शास्त्र के विरुद्ध मिश्रण करके भोजन करना संयोजना नामका दोष है।

२८३. प्र०—अतिमात्र दोष किसे कहते हैं?

उ०—उदरके चार भाग करके दो भाग अन्नसे और एक भाग जलसे भरना चाहिये। तथा एक भाग खाली रखना चाहिये। इस प्रमाणका उल्लंघन करके भर पेट भोजन करना अतिमात्र दोष है।

२८४. प्र०—साधु के भोजन के अन्तराय कौन से हैं?

उ०—आहारके लिये जाते हुए या खड़े हुए मुनिके ऊपर यदि कौवा वगैरह बीट कर दे, अपवित्र वस्तु पैरमें लग जाये, अपनेको वमन हो जाये, कोई टोक दे कि आहार मत करो, अपने या दूसरेके शरीरसे बहते हुए रक्त पीप वगैरहको देख ले, दुःखसे अपने या अपने निकटवर्ती जनोंकी आँखोंमें आँसू आ जाये, सिद्ध भक्ति करनेके पश्चात् यदि हाथसे घुटनेसे नीचेका भाग छुआ जाये, तिरछे पड़े हुए घुटने प्रमाण लकड़ी पत्थर वगैरहको यदि लाँघकर जाना पड़े, अपनी नाभिसे नीचे तक सिर झुकाकर यदि निकलना पड़े, यदि त्यागी हुई वस्तु खानेमें आ जाये, यदि अपने आगे कोई किसी पञ्चेन्द्रिय जीवका वध करता हो, भोजन करते हुए साधुके हाथमेंसे यदि कौवा गिद्ध वगैरह भोजन ले जाये, या ग्रास नीचे गिर जाये, या हाथमें कोई जीव आकर मर जाये, भोजन करते समय मांस मद्य आदिका दर्शन हो जाये, या साधुपर कोई उपसर्ग हो जाये, या दोनों पैरोंके बीचमेंसे कोई पञ्चेन्द्रिय जीव निकल जाये, या दाताके हाथमेंसे पात्र वगैरह नीचे गिर जाये, या साधुको मल मूत्रका त्याग हो जाये, भिक्षाके लिये भ्रमण करते हुए यदि साधु चाण्डाल वगैरहके घरमें चला जाये, यदि मूर्छा वगैरहके कारण साधु गिर जाये, यदि साधु जमीनपर बैठ जाये, यदि साधुको कुत्ता वगैरह काट ले, सिद्ध भक्ति करनेके पश्चात् साधु यदि हाथसे भूमिको छू ले, या नाक थूक आदि करे, यदि साधुके पेटसे कृमि निकले, यदि साधु अदत्त भोजनको ग्रहण कर ले, यदि साधु या उसके निकटवर्तीपर कोई भाले वगैरहसे प्रहार करे, साधु जिस ग्राम में ठहरा हो उस गाँवमें यदि आग लग जाये, और यदि साधु जमीनपर पड़े हुए रत्न वगैरहको हाथसे या पैरसे उठा ले तो साधुके भोजनमें अन्तराय हो जाता है। अर्थात् उक्त बत्तीस कारणोंमेंसे किसी एकके होनेपर भी साधुको भोजन नहीं करना चाहिये।

२१४. **प्र०—संयमके कितने भेद हैं ?**

उ०—संयमके दो भेद हैं—एक उपेक्षा संयम और एक अपहृत संयम।

२१५. **प्र०—उपेक्षा संयम किसे कहते हैं ?**

उ०—मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिका निग्रह करनेवाले और गुप्तियोंके पालक साधुका राग और द्वेषसे निर्लिप्त होना उपेक्षा संयम है।

२१६. **प्र०—अपहृत संयम किसे कहते हैं ?**

उ०—अपहृत संयमके तीन भेद हैं—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। किसी प्राणीके आ जाने पर साधुका स्वयं वहाँसे दूर हटकर उस प्राणीकी रक्षा करना उत्कृष्ट अपहृत संयम है। कोमल पीछी वगैरहसे उस प्राणीको वहाँसे हटाना मध्यम अपहृत संयम है। और किसी दूसरे उपकरणसे उस प्राणीको वहाँसे दूर करना जघन्य अपहृत संयम है।

२१७. **प्र०—आठ शुद्धियाँ कौन-सी हैं ?**

उ०—इस अपहृत संयमके लिए आठ शुद्धियाँ बतलाई गई हैं। वे इस प्रकार हैं—भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथ शुद्धि, भिक्षाशुद्धि प्रतिष्ठापन शुद्धि, शयनासनशुद्धि और वाक्यशुद्धि।

२१८. **प्र०—भावशुद्धि किसे कहते हैं ?**

उ०— कर्मोंके क्षयोपशमसे होनेवाली और मोक्षमार्गमें रुचि होनेसे उज्ज्वल तथा रागादिसे रहित विशुद्ध परिणामोंके होनेको भावशुद्धि कहते हैं।

२१९. **प्र०—कायशुद्धि किसे कहते हैं ?**

उ०—शरीरका वस्त्र-आभूषण, स्नान-विलेपन, अंग विकार आदिसे रहित होना तथा ऐसा प्रशान्त होना मानों मूर्तिमान् प्रशम गुण ही है, इसे कायशुद्धि कहते हैं।

३००. **प्र०—विनयशुद्धि किसे कहते हैं ?**

उ०—अर्हन्त आदि पूज्य गुरुओंकी यथायोग्य पूजामें तत्पर होना, ज्ञानादिकी विधिपूर्वक भक्ति करना और समस्त कार्योंमें गुरुके अनुकूल बरतना विनय शुद्धि है।

३०१. **प्र०— ईर्यापथ शुद्धि किसे कहते हैं ?**

उ०—अन्तरंग ज्ञान, और सूर्य तथा इन्द्रियके प्रकाशके द्वारा देखी हुई जमीनमें प्राणियोंको पीड़ा न पहुंचाते हुए सामने देखकर गमन करना ईर्यापथ शुद्धि है।

३१०. प्र०—ब्रह्मचर्य धर्म किसे कहते हैं ?

उ०—स्त्रीकी भावनासे रहित होकर ब्रह्म अर्थात् स्वात्मामें लीन रहना ब्रह्मचर्य है।

३११. प्र०—अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उ०—संसार शरीर वगैरहके स्वरूपका वारंवार विचार करना अनुप्रेक्षा है।

३१२. अनुप्रेक्षाके कितने भेद हैं ?

उ०—अनुप्रेक्षाके वारह भेद हैं—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, वोधिदुर्लभ, और धर्म।

३१३. प्र०—अनित्य अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उ०—शरीर और इन्द्रियोंके विषय जलके वुलवुलेके समान अनित्य हैं। सं संसारमें कुछ ध्रुव नहीं है ऐसा विचारना अनित्यानुप्रेक्षा है।

३१४. प्र—अशरण अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उ०—भूखे शेरके पंजेमें आये हुए हिरन की तरह जन्म, जरा, मृत्यु अ दुःखोंसे पीड़ित प्राणीका कोई भी शरण नहीं है। यदि कोई शरण है तो ध ही शरण है, ऐसा विचारना अशरण अनुप्रेक्षा है।

३१५. प्र०—संसार अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उ०—संसारके स्वरूपका विचार करना संसार अनुप्रेक्षा है।

३१६. प्र०—एकत्व अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उ०—जन्म, जरा, मरणके महादुःख भोगनेके लिये मैं अकेला ही हूँ। अकेला ही जन्म लेता हूँ, अकेला ही मरता हूँ इत्यादि चिन्तन करना एकत्व अनुप्रेक्षा है।

३१७. प्र०—अन्यत्व अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उ०—मैं शरीरसे भी भिन्न हूं, फिर वाह्य परिग्रह का तो कहना ही क्या है इस प्रकारका विचार करना अन्यत्व अनुप्रेक्षा है।

३१८. प्र०—अशुचि अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उ०—शरीरकी अपवित्रताका चिन्तन करना कि यह शरीर मल मूत्र वगै का घर है आदि अशुचि अनुप्रेक्षा है।

३१९. प्र०—आस्रव अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उ०—कर्मोंके आनेके द्वारको आस्रव कहते हैं। आस्रवका विचार आस्रव अनुप्रेक्षा है।

२३०. प्र०—शीत परीषह जय किसे कहते हैं ?

उ०—शीतसे पीड़ित होनेपर भी उसका प्रतीकार करनेकी भावना भी मनमें न होना शीत परीषह जय है।

२३१. प्र०—उष्ण परीषह जय किसे कहते हैं ?

उ०—ग्रीष्म-ऋतु आदिके कारण गर्मीका घोर कष्ट होते हुए भी विचलित न होना उष्ण परीषह जय है।

२३२. प्र०—दंशमशक परीषह जय किसे कहते हैं ?

उ०—डांस, मच्छर, मक्खी, पिस्सू वगैरहके काटनेपर भी परिणामोंमें विषादका न होना दंशमशक परीषह जय है।

२३३. प्र०—नाग्न्य परीषह जय किसे कहते हैं ?

उ०—माताके गर्भसे उत्पन्न हुए बालककी तरह निर्विकार नग्नरूप धारण करना नाग्न्य परीषह जय है।

२३४. प्र०—अरति परीषह जय किसे कहते हैं ?

उ०—संयमसे अरति उत्पन्न होनेके अनेक कारण होते हुए भी संयममें अत्यन्त प्रेम होना अरति परीषह जय है।

२३५. प्र०—स्त्री परीषह जय किसे कहते हैं ?

उ०—स्त्रियोंके द्वारा बाधा पहुँचानेपर भी उनके रूपको देखनेकी अथवा उनका आलिंगन करनेकी भावनाका भी न होना स्त्री परीषह जय है।

२३६. प्र०—चर्या परीषह जय किसे कहते हैं ?

उ०—पवनकी तरह एकाकी विहार करते हुए भयानक वनमें भी सिंहकी तरह निर्भय रहना और नंगे पैरोंमें कंकर पत्थर चुभनेपर भी खेद खिन्न न होना चर्या परीषह जय है।

२३७. प्र०—निषद्या परीषह जय किसे कहते हैं ?

उ०—जिस आसनसे बैठे हों उससे विचलित न होना निषद्या परीषह जय है।

२३८. प्र०—शय्या परीषह जय किसे कहते हैं ?

उ०—रात्रिमें ऊँची नीची कठोर भूमिपर पूरा बदन सीधा रखकर एक करवटसे सोना शय्या परीषह जय है।

२३९. प्र०—आक्रोश परीषह जय किसे कहते हैं ?

३४९. प्र०—अदर्शन परीषह जय किसे कहते हैं ?

उ०—श्रद्धानसे डिगनेके निमित्त उपस्थित होनेपर भी मुनि मार्गमें वरावर आस्था वनाये रखना अदर्शन परीषह जय है।

३५०. प्र०—किस कर्मके उदयसे कौन-कौन परीषह होती है ?

उ०—ज्ञानावरण कर्मके उदयमें प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होती है। दर्शन मोहनीयके उदयमें अदर्शन परीषह होती है। अन्तराय कर्मके उदयमें अलाभ परीषह होती है। चारित्र मोहनीयके उदयमें नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार, पुरस्कार, अरति, स्त्री, ये आठ परीषह होती हैं और वेदनीय कर्मके उदयमें क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृण-स्पर्श और मल ये ग्यारह परीषह होती हैं।

३५१. प्र०—एक जीवमें एक समयमें एक साथ कितनी परीषह हो सकती हैं ?

उ०—एक जीवमें एक समयमें एक साथ एकसे लेकर उन्नीस परीषह तक हो सकती हैं ? क्योंकि शीत और उष्ण परीषहमेंसे एक ही हो सकती है और शय्या, चर्या, निषद्यामेंसे एक ही हो सकती है।

३५२. प्र०—प्रज्ञा और अज्ञान परीषह एक साथ कैसे हो सकती है ?

उ०—श्रुत ज्ञानकी अपेक्षा प्रज्ञा परीषह और अवधि ज्ञानके अभावमें अज्ञ. परीषह हो सकती है।

३५३. प्र०—किस गुणस्थानमें कितनी परीषह होती हैं ?

उ०—पहलेके सात गुणस्थानोंमें सव परीषह होती हैं। आठवें गुणस्थानमें अदर्शन परीषह के विना शेष इक्कीस परीषह होती हैं। नौवें गुणस्थानके सवेद भागमें अरति परीषह के विना वीस परीषह होती हैं। और अवेद भागमें स्त्री परीषहके नष्ट हो जानेसे उन्नीस परीषह होती हैं। दसवें, ग्यारहवें और वारहवें गुणस्थानमें उन्नीस परीषहोंमेंसे नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार पुरस्कारको छोड़कर शेष चौदह परीषह होती हैं। घाति कर्मोंका विनाश होनेसे अनन्त चतुष्टयके धारी सयोगकेवली भगवान्के यद्यपि वेदनीय कर्म विद्यमान है फिर भी घातिकर्मोंके वलकी सहायताके विना वेदनीय कर्म फल देनेमें समर्थ नहीं होता अतः तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें परीषह नहीं होतीं।

३५४. प्र०—चारित्र किसे कहते हैं ?

उ०—जिन कामोंके करनेसे कर्मोंका वन्ध होता है उन कामोंको न करनेको चारित्र कहते हैं।

पहले कहे हुए छै आवश्यकोंको नियमपूर्वक करना, परीषहोंको सहना, तरगुणोंमें उत्साहयुक्त होना, अपनेसे जो तपमें अधिक हों उनकी विनय करना ीर जो तपमें लघु हों उनका भी निरादर न करना तप विनय है।

४१२. प्र०—वैयावृत्य तप किसे कहते हैं ?

उ०—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इनको कोई रोग हो जाये, इनपर कोई उपसर्ग आ जावे या इनमेंसे किसीका श्रद्धान विचलित होने लगे तो उनके रोगका इलाज करना, उनका संकट दूर करना और उपदेश आदिके द्वारा उनके श्रद्धानको दृढ़ करना वैयावृत्य है।

४१३. प्र०—आचार्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिनके पास जाकर सब श्रमण व्रताचरण करते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं।

४१४. प्र०—उपाध्याय किसे कहते हैं ?

उ०—जिनके पास जाकर श्रमणगण शास्त्राभ्यास करते हैं उन श्रमणको उपाध्याय कहते हैं।

४१५. प्र०—तपस्वी किसे कहते हैं ?

उ० जो श्रमण बहुत व्रत उपवास आदि करते हैं उन्हें तपस्वी कहते हैं।

४१६. प्र०—शैक्ष किसे कहते हैं ?

उ०—जो श्रमण शास्त्रका अभ्यास करते हैं उन्हें शैक्ष कहते हैं।

४१७. प्र०—ग्लान किसे कहते हैं ?

उ०—रोगी श्रमणोंको ग्लान कहते हैं।

४१८. प्र०—गण किसे कहते हैं ?

उ०—वृद्ध श्रमणोंकी परम्पराके साधुओंको गण कहते हैं।

४१९. प्र०—कुल किसे कहते हैं ?

उ०—दीक्षा देनेवाले आचार्यकी शिष्य परम्पराको कुल कहते हैं।

४२०. प्र०—संघ किसे कहते हैं ?

उ०—अनगार, यति, मुनि और ऋषिके भेदसे चार प्रकारके श्रमणोंके समूहको संघ कहते हैं। अथवा मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाके समूहको संघ कहते हैं।

४२१. प्र०—साधु किसे कहते हैं ?

उ०—बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि, पदानुसारित्व, संभिन्न श्रोतृत्व, अष्टांग महा-निमित्तता, प्रज्ञा श्रमणत्व, प्रत्येकबुद्धता आदि अट्ठारह भेद हैं ?

४२५. प्र०—बीजबुद्धि ऋद्धि किसे कहते हैं ?

उ०—जैसे उत्तम खेतमें बोये गये एक बीजसे अनेक बीज उत्पन्न होते हैं वैसे ही ज्ञानावरण कर्मका विशेष क्षयोपशम होनेपर एक बीज पदको लेकर उसके अनेक अर्थोंको जाननेमें कुशल होना बीजबुद्धि ऋद्धि है।

४२६. प्र०—कोष्ठबुद्धि ऋद्धि किसे कहते हैं ?

उ०—जैसे कोठेमें बहुत सा धान्य बीज परस्पर में रिले मिले बिना सुरक्षित रहता है वैसे ही परोपदेशके द्वारा ग्रहण किये बहुतसे शब्द अर्थ और बीजोंका बुद्धिमें जैसेके तैसा व्यवस्थित रहना कोष्ठबुद्धि ऋद्धि है।

४२७. प्र०—पदानुसारित्व ऋद्धि किसे कहते हैं ?

उ०—ग्रन्थके आदि, मध्य अथवा अन्तका एक पद सुनकर समस्त ग्रन्थ व अर्थका अवधारण करना पदानुसारित्व ऋद्धि है।

४२८. प्र०—संभिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि किसे कहते हैं ?

उ०—चक्रवर्तीके बारह योजन लम्बे और नौ योजन चौड़े कटकमें उत् होनेवाले हाथी, घोड़ा, ऊँट आदिके शब्दोंको तपोविशेषके बलसे अलग-अलग जान लेना संभिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि है।

४२९. प्र०—अष्टांग महानिमित्तता ऋद्धि किसे कहते हैं ?

उ०—अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न ये आठ महानिमित्त हैं जिनसे भूत भविष्य का शुभाशुभ जाना जाता है। इन आठ महानिमित्तोंका ज्ञाता होना अष्टांग महानिमित्तता ऋद्धि है।

४४०. प्र०—अन्तरिक्ष निमित्तज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र आदिको देखकर शुभाशुभ फलका ज अन्तरिक्ष महानिमित्त ज्ञान है।

४४१. प्र०—भौम निमित्तज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—पृथ्वीकी कठोरता, कोमलता, रूक्षता आदि देखकर शुभाशुभ जान लेना और पृथ्वीके अन्दर स्थित सोना चाँदी वगैरहको स्पष्ट जान लेना भौम निमित्त ज्ञान है।

४४२. प्र०—अंग निमित्तज्ञान किसे कहते हैं ?

४६२. प्र०—पृच्छना स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उ०—संशयको दूर करनेके लिये अथवा ज्ञान विपयका निर्णय करनेके लिये विशिष्ट ज्ञानियोंसे प्रश्न करना पृच्छना है।

४६३. प्र०—अनुप्रेक्षा स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उ०—जाने हुए अर्थका वार-वार विचार करना अनुप्रेक्षा स्वाध्याय है।

४६४. प्र०—आम्नाय स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उ०—शुद्धतापूर्वक पाठ करना आम्नाय स्वाध्याय है।

४६५. प्र०—धर्मोपदेश स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उ०—धर्म कथा करना धर्मोपदेश स्वाध्याय है।

४६६ प्र०—धर्मकथाके कितने भेद हैं ?

उ०—धर्म कथाके चार भेद हैं—आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेजनी और निर्वेदनी।

४६७. प्र०—आक्षेपणी कथा किसे कहते हैं ?

उ०—स्वमत (अनेकान्त मत) का निरूपण करनेवाली कथाको आक्षेपणी कथा कहते हैं।

४६८. प्र०—विक्षेपणी कथा किसे कहते हैं ?

उ०—परमतका खण्डन करनेवाली कथाको विक्षेपणी कथा कहते हैं।

३६९. प्र०—संवेजनी कथा किसे कहते हैं ?

उ०—पुण्यका फल वतलानेवाली कथाको संवेजनी कथा कहते हैं।

४७०. प्र०—निर्वेदनी कथा किसे कहते हैं ?

उ०—संसारसे वैराग्य उत्पन्न करानेवाली कथाको निर्वेदनी कथा कहते हैं।

४७१. प्र०—व्युत्सर्ग तप किसे कहते हैं ?

उ०—वाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहके त्यागको व्युत्सर्ग तप कहते हैं। इसीसे व्युत्सर्गके दो भेद हैं—एक वाह्योपधि व्युत्सर्ग और एक अभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग।

४७२. प्र०—व्युत्सर्ग तप कौन करता है ?

उ०—जो योगी तीन गुप्तियोंका पालन करता हुआ आत्माको शरीरसे भिन्न देखता है और अपने शरीरसे भी निस्पृह है वही व्युत्सर्ग तपको करता है।

४७३. प्र०—अभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग किसे कहते हैं ?

४८२. प्र०—इष्टवियोग आर्तध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—स्त्री पुत्र आदि प्रिय वस्तुओंका वियोग हो जाने पर उनसे मिलन होनेका बार-बार विचार करना इष्ट वियोग आर्तध्यान है।

४८३. प्र०—वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—वात आदिके विकारसे शरीरमें पीड़ा होने पर रात-दिन उसीकी चिन्ता करना वेदना नामक आर्तध्यान है।

४८४. प्र०—निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—भोगोंकी तृष्णासे पीड़ित होकर रात-दिन आगामी भोगोंको प्राप्त करनेकी ही चिन्ता करते रहना निदान आर्तध्यान है।

४८५. प्र०—आर्तध्यान किसके होता है ?

उ०—आर्तध्यान पहले गुणस्थानसे लेकर छठे गुणस्थान तक ही होता है। किन्तु छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके निदान नामका आर्तध्यान नहीं होता। बाकीके तीन आर्तध्यान प्रमादके उदयसे जब कभी हो जाते हैं।

४८६. प्र०—रौद्रध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—हिंसा करने, झूठ बोलने, चोरी करने और परिग्रहका संचय करनेमें ही मग्न रहनेसे रौद्र ध्यान होता है।

४८७. प्र०—रौद्रध्यान किसके होता है ?

उ०—मुनिको रौद्र ध्यान नहीं। यदि कदाचित् मुनिको भी रौद्र ध्यान हो जाये तो उन्हें मुनिपदसे भ्रष्ट समझना चाहिये।

४८८. प्र०—धर्म्यध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—धर्मयुक्त ध्यानको धर्मध्यान कहते हैं। उसके चार भेद हैं—आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय और संस्थान विचय।

४८९. प्र०—आज्ञाविचय धर्म्यध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—अच्छे उपदेष्टाके न होनेसे, अपनी बुद्धिके मन्द होनेसे और पदार्थके सूक्ष्म होनेसे जब युक्ति और उदाहरणकी गति न हो तो ऐसी अवस्थाओंमें सर्वज्ञके द्वारा कहे हुए आगमको प्रमाण मानकर गहन पदार्थ का श्रद्धान कर लेना कि यह ऐसा ही है, आज्ञा विचय है। अथवा स्वयं तत्त्वोंका जानकार होते हुए भी दूसरोंको समझानेके लिए युक्ति दृष्टान्त आदिका विचार करते रहना आज्ञाविचय है।

४९६. प्र०—मारुती धारणा किसे कहते हैं?

उ०—फिर योगी आकाशमें विचरते हुए वेगशाली वायुमण्डलका चिन्तन करता है। फिर ऐसा चिन्तन करता है कि वह वायुमण्डल शरीर वगैरहके भस्मको उड़ाकर शान्त हो गया है यह मारुती धारणा है।

४९७. प्र०—वारुणी धारणाका क्या स्वरूप है?

उ०—फिर वह ध्यानी मेघोंसे भरे हुए आकाशका ध्यान करता है। उनको बरसते हुए विचारता है। फिर जलके प्रवाहसे आकाशको बहाते हुए वरुण मण्डलका चिन्तन करता है। फिर वह विचारता है कि वह वरुणमण्डल शरीरके जलनेसे उत्पन्न हुई समस्त भस्मको धो देता है। यह वारुणी धारणा है।

४९८. प्र०—तत्त्वरूपवती धारणाका क्या स्वरूप है?

उ०—फिर वह योगी सिंहासनपर विराजमान, देव दानवोंसे पूजित सर्वज्ञ समान अपने आत्माका चिन्तन करता है। फिर आठ कर्मोसे रहित निर्मल पुरुषाकार अपने आत्माका चिन्तन करता है। यह तत्त्वरूपवती धारणा है।

४९९. प्र०—पदस्थ ध्यान किसे कहते हैं?

उ०—पवित्र मंत्रोंके अक्षररूप पदोंका अवलम्बन लेकर जो ध्यान किया जाता है वह पदस्थ ध्यान है।

५००. प्र०—ध्यानके योग्य मंत्राक्षर कौनसे हैं?

उ०—पंच परमेष्ठीका वाचक पंच नमस्कार मंत्र, 'अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः' यह सोलह अक्षरोंका मंत्र, 'अरहन्त सिद्ध' यह छै अक्षरोंका मंत्र 'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः' पाँच तत्त्वोंसे युक्त पंचाक्षरी मंत्र, 'अरहन्त' यह चार अक्षरका मंत्र, 'सिद्ध' यह दो अक्षरका मंत्र तथा अन्य भी अनेक मंत्र ध्यानके योग्य हैं।

५०१. प्र०—रूपस्थ ध्यान किसे कहते हैं?

उ०—जिस ध्यानमें समवसरण आदि महिमासे युक्त अरहन्तके स्वरूपका चिन्तन किया जाता है उसे रूपस्थ ध्यान कहते हैं।

५०२. प्र०—रूपातीत ध्यान किसे कहते हैं?

उ०—जिस ध्यानमें शुद्ध चिन्दानन्दमय, पुरुषाकार और लोकके अग्रभागमें स्थित आत्माका ध्यान किया जाता है उसे रूपातीत ध्यान कहते हैं।

५०३. प्र०—धर्म्यध्यान किसके होता है?

उ०—चौथे, पाँचवें, छठे और सा[illegible]स्थान वाले जीवोंके ही धर्मध्यान होता है।

५११. प्र०—सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति ध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—जब केवली भगवान्की आयु अन्तर्मुहूर्त शेष रहती है तब वे बादरकाययोगमें स्थिर होकर बादर वचनयोग और बादर मनोयोगको सूक्ष्म करते हैं। फिर वचनयोग और मनोयोगमें स्थित होकर बादर काययोगको सूक्ष्म करते हैं। फिर सूक्ष्म काययोगमें स्थित होकर वचनयोग और मनयोगका निग्रह करते हैं तब सूक्ष्म काययोगके द्वारा सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति ध्यान करते हैं।

५१२. प्र०—समुच्छिन्न अथवा व्युपरत क्रियानिवृत्ति ध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—तीसरे शुक्लध्यानके पश्चात् समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति नामका चौथा शुक्लध्यान होता है। इसमें श्वासोच्छ्वासका संचार, समस्त मनोयोग, वचन योग, काययोग और समस्त प्रदेशोंका हलन-चलन आदि क्रिया रुक जाती है इसलिये इसे समुच्छिन्न क्रिया निर्वाति कहते हैं। इसके होनेपर मोक्षके साक्षात् कारण चारित्र, दर्शन और ज्ञान पूर्ण हो जानेसे अयोग केवली भगवान् शुद्ध सुवर्णकी तरह निर्मल आत्मरूप होकर निर्वाणको प्राप्त करते हैं।

५१३. प्र०—निर्ग्रन्थ किसे कहते हैं ?

उ०—सम्यग्दृष्टि होनेके साथ ही साथ जो बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहके त्यागी होते हैं उन्हें निर्ग्रन्थ कहते हैं। इसीसे दि० जैन साधु निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं।

५१४. प्र०—निर्ग्रन्थके कितने भेद हैं ?

उ०—पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक इन पाँचोंको निर्ग्रन्थ कहते हैं।

५१५. प्र०—पुलाक मुनि किसे कहते हैं ?

उ०—जिन मुनियोंके उत्तर गुणकी भावना भी नहीं होती और मूलगुणोंमें भी जो कभी-कभी दोष लगा लेते हैं उन मुनियोंको पुलाक कहते हैं।

५१६. प्र०—पुलाक मुनिकी अन्य विशेषताएँ क्या हैं ?

उ०—पुलाक मुनिके सामायिक और छेदोपस्थाना चारित्र होता है, कम से कम आचारांगके और अधिकसे अधिक दस पूर्वके ज्ञाता होते हैं। उनके तीन शुभ लेश्याएँ होती हैं और मर करके वह अधिकसे अधिक बारहवें स्वर्ग तक जन्म लेते हैं।

५१७. प्र०—बकुश मुनि किसे कहते हैं ?

उ०—जिनके मूलगुण तो निर्दोष होते हैं किन्तु जिन्हें अपने शरीर तथा पीछी वगैरह उपकरणोंसे मोह होता है उन्हें बकुश मुनि कहते हैं ?

उनके एक शुक्ल लेश्या ही होती है। ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ मरकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक जन्म लेते हैं।

५२६. प्र०—स्नातक किसे कहते हैं ?

उ०—जिनके घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं ऐसे केवलियोंको स्नातक कहते हैं।

५२७. प्र०—स्नातककी अन्य विशेषताएँ क्या हैं ?

उ०—स्नातकके एक यथाख्यात संयम ही होता है। केवलज्ञानी होनेसे श्रुताभ्यासका प्रश्न ही नहीं उठता। एक शुक्ल लेश्या ही होती है। वह नियमसे मुक्त हो जाते हैं।

५२८. प्र०—पाखंडी निर्ग्रन्थ कितने प्रकारके होते हैं ?

उ०—पाखण्डी निर्ग्रन्थ पांच प्रकारके होते हैं—अवसन्न, पार्श्वस्थ, कुशील, संसक्त और यथाच्छन्द।

५२९. प्र०—अवसन्न मुनि किसे कहते हैं ?

उ०—जिसका चारित्र अशुद्ध है उसे अवसन्न मुनि कहते हैं। अवसन्न मुनि पिछी कमण्डलु आदि उपकरणोंमें आसक्त रहता है, वसति संस्तर आहार वगैरह की शुद्धि और समितियोंके पालनमें प्रमाद करता है। आवश्यकोंका पालन वचन और कायसे ही करता है, मनसे नहीं करता।

५३०. प्र०—पार्श्वस्थ मुनि किसे कहते हैं ?

उ०—जो निरतिचार संयमका पालन नहीं करते उन्हें पार्श्वस्थ मुनि कहते हैं। पार्श्वस्थ मुनि निषिद्ध व्यक्तियोंके यहाँ आहार ग्रहण करते हैं, आहार लेनेसे पहले और पीछे दाताकी प्रशंसा करते हैं, उत्पादन दोष एषणा दोष सहित आहार लेते है, सदा एक ही वसतिकामें रहते हैं और एक ही संथरेपर सोते हैं। गृहस्थोंके घर अपनी बैठक लगाते हैं। गृहस्थोंके उपकरणोंसे शौच आदि क्रिया करते हैं। सूई, कैंची, नख काटनेका अस्त्र, कान का मैल निकालनेका साधन आदिका उपयोग करते हैं। रातमें खूब सोते हैं, संथरा भी बड़ा लगाते हैं, तेल मलवाते हैं, बिना जरूरत हाथ पैर धोते हैं।

५३१. प्र०—कुशील मुनि किसे कहते हैं ?

उ०—कुशील मुनि अनेक प्रकारके होते हैं। जो राजद्वारमें कौतुक दिखाकर लोकप्रिय होनेकी चेष्टा करते हैं वे कौतुक कुशील हैं। जो अभिमन्त्रित पानी आदिके द्वारा किसीको वशमें करते हैं वे भूति कुशील हैं। विद्याओंके द्वारा लोगोंका अनुरंजन करनेवाले प्रसेनिका कुशील कहे जाते हैं। अपनी जाति

उ०—प्रायश्चित्तका जानकार होना और प्रायश्चित्त देनेमें कुशल होना व्यवहारवत्त्व गुण है।

५४०. प्र०—प्रकारवत्व गुण किसे कहते हैं ?

उ०—समाधिमरण करनेवाले क्षपककी सेवा करनेमें तत्पर होना प्रकारवत्व गुण है।

५४१. प्र०—आयापायदर्शित्व गुण किसे कहते हैं ?

उ०—अपनी आलोचना करनेवाले क्षपकके गुण और दोषों को बतलानेमें कुशल होना आयापायदर्शित्व गुण है।

५४२. प्र०—उत्पीडकत्व गुण किसे कहते हैं ?

उ०—व्रत वगैरहके छिपे हुए अतिचारोंको बाहर निकालनेकी सा[illegible] होना उत्पीडकत्व गुण है।

५४३. प्र०—अपरिस्रावित्व गुण किसे कहते हैं ?

उ०—अपनी आलोचना करते हुए क्षपकने एकान्तमें यदि अपने कुछ गुप्त दोष कहे हों तो उनको प्रकट न करना अपरिस्रावित्व गुण है।

५४४. प्र०—सुखावहत्व गुण किसे कहते हैं ?

उ०—कानोंको सुख देनेवाली मनोहरवाणीके द्वारा समाधिमरण करनेवाले-की पीड़ाको कम करनेमें कुशल होना सुखावहत्व गुण है।

५४५. प्र०—स्थितिकल्प कौनसे हैं ?

उ०—आचेलक्य, औद्देशिक पिण्ड त्याग, शय्याधर पिण्ड त्याग, राजकीय पिण्ड त्याग, कृतिकर्म, व्रतारोपण योग्यता, ज्येष्ठता, प्रतिक्रमण, मासैकवासित और पर्युषण ये दस स्थिति कल्प हैं।

५४६. प्र०—आचेलक्य स्थितिकल्प किसे कहते हैं ?

उ०—वस्त्र आदि परिग्रहको छोड़कर नग्न रहना आचेलक्य स्थिति कल्प है।

५४७. प्र०—औद्देशिक पिण्डत्याग स्थितिकल्प किसे कहते हैं ?

उ०—श्रमणोंके उद्देश्यसे बनाये गये भोजन वगैरहको औद्देशिक कहते हैं। औद्देशिक पिण्डका त्याग करना दूसरा स्थितिकल्प है।

५४८. प्र०—शय्याधर पिण्डत्याग स्थितिकल्प किसे कहते हैं ?

उ०—जो वसति बनाता है, या दूसरे द्वारा बनवायी हुई वसतिका जीर्णोद्धार कराता है अथवा जो न तो वसति बनाता है और न जीर्णोद्धार कराता है किन्तु

भी ठहर सकते हैं। अर्थात् यदि वृष्टि अधिक हुई हो, या अध्ययन करना हो या शरीर अशक्त हो अथवा किसी साधुकी वैयावृत्य करना हो तो आषाढ़ शुक्ल दसमीसे आरम्भ करके कार्तिककी पूर्णिमासे आगे भी और तीस दिन तक एक स्थानपर रह सकते हैं। और यदि वर्षावासके स्थानपर मारी रोग या दुर्भिक्षका प्रकोप हो जाये जिससे श्रावक लोग वहाँसे भाग जायें या गच्छका नाश होनेके निमित्त उपस्थित हो जायें तो आषाढ़ पूर्णिमा बीतनेपर श्रावण वदी चतुर्थी तक दूसरे स्थानपर जा सकते हैं। किन्तु श्रावण कृष्ण चतुर्थीके बाद और कार्तिक शुक्ला पंचमीसे पहले प्रयोजन होनेपर भी साधु संघको अन्यत्र नहीं जाना चाहिये। यदि अनिवार्य कारणोंसे जाना ही पड़े तो प्रायश्चित्त लेना चाहिये।

५५७. प्र०—एक विहारी मुनि कैसे होने चाहिए ?

उ०—जो तपस्वी हों, शास्त्रज्ञ हों, धीरवीर हों, शुभ परिणाम वाले हों, भूख प्यासकी बाधाको सह सकते हों, ऐसे चिरदीक्षित साधुको ही अकेले विहार करनेकी आज्ञा है। इसके विपरीत जो सोने, बैठने, लेने देने और भिक्षाचरणमें स्वच्छन्दचारी होते हैं उन्हें एकाकी विहार करनेकी आज्ञा नहीं है।

५५८. प्र०—साधुको कैसे गुरुकुलमें नहीं रहना चाहिए ?

उ०—आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणधर ये पाँच संघके आधार होते हैं। जहाँ ये न हों वहां साधुको नहीं रहना चाहिये।

५५९. प्र०—आचार्य वगैरहका क्या स्वरूप है ?

उ०—जो शिष्योंका अनुशासन करनेमें कुशल हो उसे आचार्य कहते हैं। जो धर्मका उपदेश करनेमें कुशल हो वह उपाध्याय है। चर्या वगैरहके द्वारा संघका जो उपकारक हो वह प्रवर्तक है। जो मर्यादाका रक्षक होता है वह स्थविर है। और गणके रक्षकको गणधर कहते हैं। ये पांचों साधु संघके आधार होते हैं।

५६०. प्र०—साधुकी परीक्षाके स्थान कौनसे हैं ?

उ०—छै आवश्यक, प्रतिलेखन (पीछेसे किया जानेवाला कार्य), बातचीत, वस्तुका रखना और ग्रहण करना, स्वाध्याय, एकाकी विहार और भिक्षाग्रहण करते समय साधुकी परीक्षा हो जाती है कि साधुका आचार ठीक है या नहीं।

५६१. प्र०—परीक्षासे यदि साधु अयोग्य सिद्ध हो तो क्या करना चाहिए ?

---

५५९. मूलाचार, सामा०, गा० १४९।
५६०. मूलाचार, सामा०, गा० १५५।